DEVOTIONAL - 2010

ENTRUSTED WITH THE GOSPEL

INDIAN CHURCH OF CHRIST - MUMBAI

डीवोशनल - २०१०

सुसमाचार से सहजा हुआ

INDIAN CHURCH OF CHRIST - MUMBAI

अनुक्रमणिका

अध्याय क्र.	शीर्षक	प.क्र.
०१.	कौन है कलीसिया - भाग १	१
०२.	जब परमेश्वर के लोगों में फूट पड़ जाए	६
०३	परमेश्वर की ओर दो अलग नज़रिये	१२
०४	सच्चाई में आगे बढ़ना	१७
०५	मसीह के शरीर में एकसाथ मिलकर काम करना	२१
०६	निरीक्षण में उत्तीर्ण होना	२७
०७	मसीही अगुवाई की समस्याएं	३०

BLANK PAGE

अध्याय-१

कलीसिया कौन है? (१कुरु १ - भाग १)

१कुरून्थियों १:१-९

पिच्छले कई वर्षों से हम कलीसिया की अलग-अलग समस्याओं पर बात करते आ रहे हैं।

कलीसिया में फूट, कलीसिया की अगुवाई से लोग नाखुश, और कई बार तो लोग कलीसिया के कुछ अगुवों को निकाल बाहर करने का प्रयत्न करते हैं।

यह झगड़े लोगों से उस शान्ति को छीन लेते हैं जो परमेश्वर हमें देना चाहते हैं।

वो दोस्त को दोस्त के खिलाफ कर देते हैं, और वे लोग जो कभी आत्मा में एक होने के गीत गाते वो अचानक एक दूसरे के खिलाफ षड़यंत्र रचने लगते हैं।

हम में से कई हमारे जीवन में पहले हुए झगड़े या फूट से डरे रहते हैं।

आप उन लोगों को समझ रहे हैं ना जो कहते हैं, " मैं यीशु से प्रेम करता हूं, लेकिन कलीसिया से मुझे नफरत है" हमारे प्रभू की ऐसी ईच्छा कभी न थी।

१कुरुन्थियों से इस नई श्रुंखला को हम इसलिये शुरु कर रहे हैं ताकि फूट को दूर कर उस एकता को पा सकें जिसके लिये हमारे प्रभू ने प्रार्थना की थी।

प्रेरित १८ में हम, कुरिन्थ कलीसिया की स्थापना कैसे हुई इसके बारे में पढ़ते हैं।

हम पढ़ते हैं कि पौलुस ने कलीसिया की शुरुआत की और करीब देड़ साल तक उन्हें परमेश्वर के वचन के बारे में सिखाते रहे। (प्रेरित १८:११)

कुरिन्थ में पौलुस का विराध हुआ और पौलुस शहर छोड़कर चला गया। प्रेरित १८:१७ में एक दिलचस्प बात दिखाई देती है।

यहूदियों ने पौलुस पर आरोप लगाकर उसे न्यायालय में लाया लेकिन जब उनकी न सुनी गई तो बताया जाता है कि उन्होंने अराधनालय के अगुवे सोस्थिनेस को पकड़कर खूब पीटा।

१कुरुन्थियों १ वचन १ में हमें यह बताया गया है कि पत्र पौलुस और "हमारे भाई"

सोस्थिनेस के पास से आया है। हो सकता है कि यह वही व्यक्ति हो, शायद कुरिन्थ की कलीसिया के लोग उसे जानते थे।

१कुरुन्थियों, कुरिन्थ की कलीसिया को लिखे पौलुस के पत्रों का एक विस्तारित भाग है।

१कुरु. ५:९ में पौलुस ने लिखा है, "मैंने अपने पत्र में तुम्हे लिखा है कि व्यभिचारियों की संगती न करना"।

क्योंकि पौलुस ने यह पत्र १कुरुन्थियों के पहले अध्यायों में नहीं लिखा है इससे हमें एसा लगेगा कि
हम जिस पत्र को पढ़ने वाले हैं वह पत्र उससे पहले लिखा गया है।

पहला पत्र खो गया है। उस पत्र के जवाब में लोगों ने(१कुरुन्थियों ७:१) खुद एक पत्र लिखा जिसमें पौलुस से कई प्रश्नों का जवाब पूच्छा गया।

इस सुबह पहले ९ वचनों में हम पौलुस के परिचय के शब्दों के बारे में देखेंगे। मुझे लगता है कि इन शब्दों के द्वारा पौलुस अपने बाकि के पत्रों के लिये एक नींव तैयार कर रहे थे।

अपने शब्दों में पौलुस उन लोगों के चरित्र का वर्णन करता है जिन्हें कलीसिया को जोड़ना है।

कलीसिया का वर्णन करते समय पौलुस कई बातों का ज़िक्र करते हैं जिसके बारे में हम हमारे अध्ययन में और गहराई से जानेंगे।

कलीसिया एक ईश्वरीय रचना है (व.२)

पौलुस ने अपना पत्र " कुरिन्थ में परमेश्वर की कलीसिया" को लिखा। तुरन्त पौलुस ने इस बात पर ज़ोर डाला कि कलीसिया का संम्बन्ध किसी खास संस्था या नाम से नहीं होता।

यह **मेरी** या **आपकी** कलीसिया नहीं है। यह **परमेश्वर** की कलीसिया है।

परमेश्वर ने हमें एकत्रित लाया है। इस पृथ्वी पर हम **उसका** शरीर हैं। परमेश्वर ने हमें यीशु के कर्मों के द्वारा एकत्रित लाया और पवित्र आत्मा द्वारा परमेश्वर ने हमें शक्ति दी है।

इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि कितने समय तक हम कलीसिया से जुड़े रहे, या कलीसिया के अलग - अलग कामों में कितना योगदान दिया है .....यह हमारी नहीं बरन

उसकी कलीसिया है।

जब हम यह भूल जाते हैं कि " हम हमारे नहीं लेकिन हमें एक मोल चुकाकर खरीदा गया है" तब हम मुसिबत में पड़ते हैं।

तब हम एक अलग क्षेत्र बनाने लगते हैं और यह सोचने लगते हैं कि हमारे समय के अनुसार कलीसिया को काम करना चाहिये, हमारे मकसद पर चलना चाहिये, और हमारे तरीके से सब बातें होनी चाहिये। यह हमारी कलीसिया नहीं है और हमें अच्छी तरीके से यह समझ लेना चाहिये।

यह उन लोगों से बनी है जो मसीह यीशु में पवित्र किये गए हैं (व.२, ४-४)

पौलुस इस बात को समझते हैं कि कलीसिया उन लोगों से बनी है जिन्होंने मसीह से रिश्ता जोड़ा और उससे उनका जीवन बदला है।

"पवित्र किये गए" का अर्थ है कि परमेश्वर के काम के लिये अलग किये गश। एक प्रकार से सोचें तो हमें भी पवित्र " किया गया" है। और दूसरे प्रकार से देखें तो हम पवित्र "किये जा रहे हैं"। मैं समझाता हूं।

जब हम अपने उद्धार और नए जीवन के लिये मसीह में विश्वास करते हैं, तो एक प्रकार से हम पवित्र हो गए हैं।

हमें अलग कर परमेश्वर का पुत्र जिसे पाप से छुड़ाया गया ऐसा बताया गया है। लेकिन व्यवहारिक रुप से यदि देखें तो हम अब भी पाप पर विजय पाने के लिये लड़ रहे हैं।

हमारे अनुभव में, हमने अब तक विजय हासिल नहीं किया है। हम अब भी पुर्नवसन की स्थीती में हैं।

मुद्दा यह है कि सची कलीसिया ऐसे लोगों का गुट है जो परमेश्वर के साथ अपने रिश्ते में बढ़ते जा रहे हैं। परमेश्वर के अनुग्रह से वे बदले और लगातार बदल रहे हैं।

हमारी पहचान मसीह में है ना कि हमारी उपाधी में (व.२)

पौलुस कहता है कलीसिया उन लोगों से बनी है जो, "हर जगह हमारे और अपने प्रभू यीशु

मसीह के नाम से प्रार्थना करते हैं"।

पौलुस कुरिन्थ की कलीसिया (और हमें) यह याद दिलाना चाहता है कि एक व्यक्ति उसकी उपाधी, जिस कलीसिया में वह जाता है, या फिर उसके कर्म जो उसने किये यह बातें उसे सचा शीष्य नहीं बनते।

एक व्यक्ति को यह बात परमेश्वर का पुत्र बनाता है कि वह यीशु की ओर यह जानकर मुड़े कि बस एक वही है जो उसे पाप के नशे से छुड़ा सकता है। क्या कुछ महत्वपूर्ण बातों में हम असहमत हैं? हां।

इन बातों पर चर्चा होनी चाहिये और बहस भी क्योंकि हम परमेश्वर के सच्चे ज्ञान और समझ को ढूंढते हैं। लेकिन हमें यह समझना ज़रूरी है कि यह बहस भीतरी दिवारों के बारे में है, यह मसीहियों के बीच की बहस है। बहस यह नहीं साबित करता कि कौन विश्वासी है।

हम उन बातों से लैस हैं जिनसे हमें उसकी सेवा करनी है (व.७)

मुसिबत में पड़े कुरिन्थ कलीसिया को पौलुस ने कहा, " किसी वरदान में तुम्हे कमी नहीं हुई"। लेकिन पौलुस यह नहीं कह रहा था कि कलीसिया का हरएक व्यक्ति पवित्र आत्मा के हर वरदान, जो बाद में उसने १कुरू.१२-१४ लिखा, पा चुका है। उसका कहना था कि पूरे विश्वास से उसके पीच्छे चलने के लिये ज़रूरी हर बात उनके पास थी।

परमेश्वर के मकसद को पूरा करने के लिये उसने हमें वो औज़ार दिये हैं। उसने हमें जिस काम को करने के लिये बुलाया है उसे पूरा करने के लिये लोग, प्रतिभा और साधन दिये हैं जिनकी हमें ज़रुरत है।

यदि हम किसी काम को करने में असमर्थ हैं तो उसका अर्थ यह नहीं कि उस काम को पूरा करने के लिये जिस चीज़ की ज़रूरत है वो परमेश्वर ने हमें नहीं दिया है। बल्कि उसका कारण है, या तो १) हम वो काम करना चाहते हैं जो परमेश्वर नहीं चाहता कि हम करें, या २) लोग उन वरदानों का उपयोग नहीं कर रहे जो परमेश्वर ने उन्हें दिया है।

हमारा लक्ष्य इस संसार के परे है (व.७)

यह यीशु के दुबारा आने के बारे में है। परमेश्वर के सच्चे लोग पूरे परिश्रम से इस संसार में प्रभू की सेवा करते हैं, लेकिन यह जानते हैं कि उनका मकसद इस धरती पर स्वर्ग बनाना

नहीं है। हमारा मकसद है इस संसार के लोगों को स्वर्ग का मार्ग बताना।

जब हम यह भूल जाते हैं कि यह संसार हमारा घर नहीं है तब इस संसार की बातों में हम आसानी से उलझ जाते हैं। जिन चीज़ों का महत्व नहीं होता उनके लिये लड़ना आसान हो जाता है।

हमारा आत्मविश्वास परमेश्वर के विश्वासयोग्य होने में है ना कि हमारी योग्यता में (व.८-९)

अन्ततः, पौलुस लोगों को यह याद दिलाता है कि उनका आत्मविश्वास परमेश्वर की प्रतिज्ञा पर हो ना कि अपनी योजनाओं पर। हमें रगड़कर मेहनत नहीं करनी है, या फिर ज़ोर ज़बरदस्ती। परमेश्वर ने जिस बात की प्रतिज्ञा दी है उसे पूरा करने में वह समर्थ है। उसका समय अचूक है।

कलीसिया में होने वाले अनेक समस्याओं, झगड़ों और दुर्घटनाओं का कारण है हमारी यह सोच कि हमें "बातों को संभव करना" है।

जब हम किसी भी तरह इन बातों को पूरा करना चाहते हैं तब अक्सर हम लोगों के सरों पर असहनीय बोझ डाल देते हैं ताकि "फल" पा सकें। जब फूट पड़ जाए तो हमें लगता है कि "जीत" हमारी ही होनी चाहिये।

हम बदलाव चाहते हैं और ऐसा महसूस करते हैं कि यह बदलाव अभी इसी वक्त होना चाहिये। बदलाव के कारण हम असरदार नहीं हो सकते....हम असरदार तब ही होंगे जब हम परमेश्वर की आत्मा को पूरी आज़ादी के साथ हममें और हमारे द्वारा काम करने का मौका दें।

अध्याय-२

जब परमेश्वर के लोगों में फूट पड़ जाए

१कुरिन्थियों १:१०-१७

आज के युद्ध का घोषवाक्य क्या है?

जैसा मेरा विश्वास है वैसा ही तुम्हारा भी हो - ना कम, ना ज्यादा;
मैं ही सही हूं (और कोई नहीं)।
जैसा मैं महसूस करता हूं वैसा महसूस करो, सिर्फ मेरी तरह सोचो;
जो मैं खाता हूं तुम भी वही खाओ, और जो मैं पीता हूं वही पीओ।
जैसा मैं दिखता हूं वैसा दिखो, जैसा मैं करता हूं हमेशा वैसा ही करो;
और तब-सिर्फ तब ही- मैं तुमसे संगती करुंगा।

हमें इस पर हंसी आती है, लेकिन हम यह जानते हैं इस प्रकार का मनोभाव कलीसिया में बहुत प्रबल है, हमारे विश्वास के परे।

कलीसिया की स्थापना से फूट और झगड़े की समस्या ने कलीसिया को पीड़ित कर रखा है। कुरिन्थ कलीसिया की यह पहली समस्या थी जिसकी सुधी पौलुस ने ली।

इस समस्या को पौलुस ने इतना महत्वपूर्ण जाना कि उसने अपने पत्र के पहले तीन अध्याय इसी विषय को समर्पित किये।

इस डीवोशन में हम पौलुस ने कलीसिया को कही बातों पर गौर करेंगे। इन बातों से हम हमारे जीवन के लिये कुछ उपयोगी बातों को लेंगे।

स्तर (व.१०)

मसीही संगती के लिये पौलुस ने कुछ स्तर कायम किये। वह तीन अलग-अलग कहावतों का उपयोग करके परमेश्वर द्वारा अपेक्षित एकता का वर्णन करते हैं।

एक दूसरे के साथ सहमत रहो
हमारे बीच कोई फूट न हो
मन और विचार में पूर्णता से एकमत

यह सुनने में अच्छा लगता है लेकिन इन वाक्यों को अव्यवहारिक जानकर हम झटक देते हैं। यह एक असंभव स्तर लगता है। लेकिन यह वास्तव में ऐसा है नहीं।

पौलुस यह नहीं कह रहा कि एकमत वाली कलीसिया में कभी मतभेद न होंगे।

मेरा विश्वास है कि विविधता अच्छी है.....यह हमें इमानदार रखता है। विविधता पाप नहीं है। फूट पाप है।

जबकि हमें विश्वास के मूल मुद्दों पर एकमत होना चाहिये वहीं दूसरे बातों के प्रति थोड़ा सहनशील और ज्यादा कठोर स्वभाव न हो।

जब कलीसिया के लोग झगड़ते हैं तब कलीसिया का नाम बदनाम होता है और परमेश्वर की महीमा कलंकित होती है।

हमारा काम है कि हमारे मतभेदों को अलग रख मुख्य बातों पर ध्यान देना: परमेश्वर की महीमा और सुसमाचार की शक्ति।

समस्या

पौलुस यहां कि समस्या के बारे में बात कर रहा है? आओ हम वचन ११-१२ पढ़ें

जान पड़ता है कि कलीसिया अलग-अलग दलबंदी में बंटा था। कलीसिया के लोग अलग-अलग शिक्षकों के पीच्छे चल रहे थे।

कुछ पौलुस के पीच्छे चल रहे थे, मुमकिन है कि ये अन्यजाती के लोग थे, जिनमें से कई लोग पौलुस की मीनिस्ट्री में विश्वास में आए।

दूसरे पतरस के पीच्छे चल रहे थे, ये यहूदी पार्श्वभूमि के लोग हो सकते हैं जो अन्यजाति के लोगों की स्वतंत्रता का विरोध कर रहे थे।

और कुछ लोग ने अपुल्लोस का समर्थन किया। संम्भव है कि कुरिन्थ में अपुल्लोस (पौलुस के बाद)कलीसिया का एक लोकप्रिय अगुवा था।

वह उसके अच्छा बोलने की योग्यता के लिये जाना जाता था और हो सकता है कि इसी कारण अनेक पढ़े लिखे लोग उसके प्रति आकर्षित हुए।
आखीरी गुट का दावा था कि वह "यीशु के पीच्छे" चल रहे थे। ऐसा लगता है कि पौलुस ऐसे गुट का सामना कर रहा था जो अपने आपको सबसे उत्कृष्ट समझता था जिसे,

"धर्मशास्त्र के बातों से कुछ लेना देना न था....वो सिर्फ यीशु के पीच्छे चलना चाहते थे"।

यदि यह लोग सचमुच यीशु के पीच्छे चल रहे थे तो कलीसिया में फूट डालने में मदद करने के बजाए वो उसे एक साथ लाने की कोशीश करते।

मैं नहीं जानता कि इन फूट का कलीसिया पर क्या प्रभाव पड़ रहा था। इस बात में कोई शक नहीं कि एक गुट दूसरे गुट को अपने से "कम धार्मिक" समझते और शायद जो उनसे सहमत न थे उनके उद्धार के बारे में भी प्रश्न करते।

शायद उस समय की कलीसिया हमारे आज के राजनैतिक गुटों के समान बन रही थी, गुट के राजनैतिक मुद्दों से भरे जहां कुछ भी हासिल कर पाना मुश्किल था।

शिक्षक का काम (व.१७) है "सुसमाचार का प्रचार"। शिक्षक को चाहिये कि वह लोगों को अपने से परे यीशु और उनके वचनों को उन्हें दिखाए।

कृपया कुछ बात पर ध्यांन दो। कोई ऐसी बात दिखाई नहीं देती जहां यह लगे कि पौलुस, पतरस और अपुल्लोस ने इस लगन को प्रोत्साहन दिया या इस प्रकार के लगन की इच्छा की। यह लोग कहीं भी अपने पीच्छे चलने वाले लोग नहीं चाहते थे।

वे पूरी तरह परमेश्वर के सलाह की घोषणा कर रहे थे। वे लोगों को यीशु की ओर ले जा रहे थे।

जोड़

पौलुस ने तीन सरल प्रश्नों के साथ कुरिन्थ के फूट की समस्या का सामना किया ताकि उनको सच्चाई का ज्ञान हो।
१. क्या मसीह बंटा हुआ है? (कतई नहीं)
२. क्या इन में से कोई व्यक्ति हमारे लिये मरा? (नहीं)
३. क्या हमें उनके नाम में बपतिस्मा दिया गया?(मेरा विश्वास है हरगीज़ नहीं)

क्योंकि इन नाम मात्र पुरुषों को मसीह में हमारे नए जीवन से कुछ लेना देना न था, तो वो एक आराधना का साधन कैसे बन सकते हैं।
हमें यह याद रखना चाहिये कि उत्तम पुरुष केवल उत्तम काम करते हैं। पौलुस हमें याद दिलाता है कि केवल एक ही व्यक्ति है जिसके प्रति हमें अपनी नीष्ठा दिखाना है; वो है यीशु।

पौलुस ने १४-१७ वचन का उपयोग करके हमें यह बताया कि उसने ज्यादा लोगों को बपतिस्मा नहीं दिया। यह नहीं कि पौलुस के लिये बपतिस्मा का कोंई महत्व नहीं; वह यह बताना चाहता है कि वह उसके पीच्छे चलने वाले नहीं बनाना चाहता था।

वह इस बात से संतुष्ट था कि वह प्रचार करे और दूसरे लोग बपतिस्मा देने का काम करें।

बाकि के प्रश्न

मझे लगता है पौलुस के सलाह से दो स्वाभाविक प्रश्न खड़े होते हैं।

पहला प्रश्न है, **इस एकता के साथ हम कहां तक जा सकते हैं?**

रोमियों के किताब के अन्त में पौलुस ने लिखा, रोमियों १६:१७-१८

यहूदा की किताब में वचन ३-४ हम पढ़ेंगे,

इन दो अनुछेदों से यह साफ होता है कि ऐसे भी समय होते हैं जब हमें दूसरों के शिक्षण के विरोध में खड़ा होना चाहिये।

मुझे लगता है कि पवित्र शास्त्र सीखाता है कि प्राथमिक और अनिवार्य सिद्धान्तों में सहमती होना ज़रूरी है।

अनिवार्य सिद्धान्तों के मुद्दे होंगे : मसीह का स्वभाव, मनुष्यों के पाप की वृत्ती, वचनों का अधिकार
उद्धार का मार्ग, मसीह का पुनरुत्थान और मसीह का फिर से आना।

जब इन बातों में सहमती नहीं है तो हमें विश्वास के लिये स्पर्धा करना चाहिये। हम यूं ही इन बातों को जाने नहीं दे सकते। यह सिद्धान्त हैं जिनकी रक्षा हमें करनी चाहिये।

दूसरे अप्रधान मतभेदों के मुद्दे वो हैं जो ज्यादा अनिवार्य नहीं हैं : आराधना का तरीका, कलीसिया के गीत, पवित्र शास्त्र का पसंदीदा अनुवाद (वर्जन), और इस प्रकार के दूसरे मुद्दे ज्यादा महत्व नहीं रखते।
व्यक्तिगत रुप से मेरा यह विश्वास है कि इन मतभेदों पर लड़ना सही नहीं है। इन क्षेत्रों में विविधता के लिये जगह है। जब एक सभ्य रीती से हम इन बातों पर चर्चा करेंगे तब हमारा

विश्वास भी बढ़ेगा।

ऐसा लगता है कि कुरिन्थ में समस्या अनिवार्य सिद्धान्तों की नहीं थी। समस्या या तो दूसरे अप्रधान बातों की थी या फिर छोटे मोटे व्यक्तिगत कारणों की थी।

मसीह के लिये इन समस्याओं को सुलझाना चाहिये। अक्सर हम एक दूसरे पर दोष लगाते हैं। हम हमारे पसंदीदा मुद्दों पर भावुकता से विवाद करते हैं और विश्वास से दूर होने की गंभीरता को अनदेखा करते हैं।

झगड़े की स्थीति को हमें कैसे संभालना चाहिये?

क्योंकि मसीह के शरीर में आपसी झगड़े तो होने ही हैं (जैसे किसी भी घर में झगड़े होते हैं), आईये हम देखें कि ऐसे समयों में कलीसिया की एकता को हम कैसे बचा सकते हैं।

पहले, हम बात करेंगे उन बातों की जो हमें **नहीं** करना चाहिये। यह हमेशा गलत है :

दूसरों की निन्दा और पीठ पीच्छे बातें

अपने ओहदे के लिये "गुप्त मीटींग" करना गलत बात है

- प्राधिकृत नीर्णय नीकालना गलत बात है। उदाहरण: यदि कोई व्यक्ति किसी बात की प्राथमिकताओं से सहमत नहीं है तो हमें इस बात से सतर्क रहना चाहिये कि हम इस कारण से यह निष्कर्श न निकालें कि वह व्यक्ति "सही" में एक सचा शीष्य नहीं है। यह वैसा ही होगा कि जैसे हम कह रहे हों कि जब तक मेरे जैसा विश्वास न हो तो स्वर्ग जाना असंम्भव है।

व्यक्तिगत रूप से आक्रमण करना गलत है। एक व्यक्तिगत आक्रमण दूसरे व्यक्तिगत आक्रमण को जन्म देता है। इस प्रकार के बातों से जो घाव होते हैं वो कभी भी भर नहीं पाते हैं।

-

इन समस्याओं को सुलझाने का पौलुस हमें एक अच्छा उदाहरण देता है। उसकी समालोचना आम है। उसने समस्या को पहचाना, अपने सूचना के स्त्रोत को पूरी तरह से परखा, और पहचाना कि वह गलत क्यों था और इसे व्यक्तिगत न बनाते हुए किया।

दुर्भाग्य की बात यह है कि पापी वृत्ती के कारण हम हर एक असहमती को व्यक्तिगत स्पर्धा समझते हैं।
असहमती की ओर हम एक जीत या हार के प्रस्ताव के रुप में देखते हैं, और हम जीतना चाहते हैं।
आवाज़ ऊंचे होते जाते हैं, क्रोध भड़क उठता है और हम जीत के प्रति अधिक संकल्पित हो

जाते बजाए इसके कि हम सच्चाई को ढूंढें।

मैं कुछ व्यवहारिक बनना चाहता हूं। जब कलीसिया में तनाव हो तो पहली बात जो करनी है वो है एक गहरी सांस लेना।

जो अपना आपा खो देते हैं उनसे कुछ अच्छे की उम्मीद नहीं होती है। अपने आप से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न पूच्छें,

१. क्या इस बात का संम्बन्ध अनन्त के महत्व से है?
२. क्या इस बात को मैंने प्रार्थना में परमेश्वर के सामने लाया है?
३. क्या परमेश्वर **मुझे** कुछ सिखाना चाहते हैं?
४. क्या यह संम्भव है कि यह समस्या मुझमें ही है? क्या यह अहम् (ईगो)की समस्या है? क्या मैं मेरे मनपसन्द बातों को औरों के लिये एक स्तर बना रहा हूं?
५. क्या यह एक ऐसी बात है जिसे मुझे नजरअन्दाज़ करना चाहिये?
६. क्या यह इतना महत्वपूर्ण है कि इसके लिये एक निश्चित बुरी भावनाओं और कलीसिया में दरार होने का धोका उठाना सही है?
७. क्या यीशु मसीह इस पर अपना समय बिताते?

असहमत होने के बावजूद भी एक दूसरे के प्रति आदर और प्रेम दिखाना, मेरा विश्वास है कि, यह मसीही प्रेम और परीपक्वता की चाबी है।

अध्याय-३
परमेश्वर की ओर दो अलग नज़रिये
१कुरिन्थियों १:१८-२५

मैं जानता हूं कि आपने इस बात का अनुभव ज़रुर लिया होगा कि आप किसी से किसी चीज़ के बारे में बात कर रहे हैं और अचानक बात चीत में एक नया मोड़ आ जाता है और आप जान भी नहीं पाते कि कब और कहां से यह नया विषय बातचीत में आ गया।

पहली नज़र में ऐसा लगता है कि पौलुस ने १कुरिन्थियों १:१८-२:५ में अचानक विषयों को बदल दिया है।
पौलुस कलीसिया में फूट के बारे में बात कर रहा था और अब ऐसा लगता है कि वह अचानक क्रूस के मूर्खता के बारे में बात कर रहा है। मैं नहीं सोचता कि पौलुस ने बात को बदला है।

जबकि वह अध्याय ३ में उन गुटों की बात करता है जो अपुल्लोस, कैफास और उसके पीच्छे चल रहे थे मुझे लगता है कि उसने विषय को कभी नहीं छोड़ा।

मेरा विश्वास है कि पौलुस झगड़े के मुख्य कारण की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है: जो महत्वपूर्ण है उसे न देख पाना।

संसार और वचनों को देखने के दो नज़रिये पौलुस हमें दिखाता है।

वो जो सुसमाचार के संदेश को देखते हैं

१. एक मूर्खता के रुप में (व.१८)
वचन १८ में पौलुस कहता है कि दो प्रकार के लोग हैं; सुसमाचार के प्रति दो प्रतिक्रिया।

लोगों का पहला गुट क्रूस को मूर्खता के रुप में देखता है, दूसरे इसे परमेश्वर के सामर्थ के रुप में देखते हैं। पौलुस ने अभी उस बात का वर्णन किया जो आज हमारे समाज का सबसे बड़ी चुनौती है: अलग सांसारिक नज़रिये की सच्चाई।

एक सांसारिक नज़रिया वो है: एक आभास (जो सच भी हो सकता है, आधा सच भी हो सकता है या फिर पूरी तरह से झूठ हो सकता है) जिसे हम थामे रहते हैं (जानते हुए या अनजाने, लगातार या कभी-कभी) जो हमारे संसार की एक मूल रचना है। यह एक ऐसा "आईना" है जिसके द्वारा हम संसार को देखते हैं।

यदि आप चश्मा लगाते हैं तो अधिकतर लोगों की दूर की नज़र या फिर नज़दीक की नज़र कमज़ोर होती है। आपका चश्मा उस दोष को दूर करने के लिये बनाया जाता है। दूर और नज़दीक के चश्मों के लिये अलग-अलग अंश होते हैं लेकिन आंखों के सभी दोष इन्ही दो बातों से जुड़े हैं।

इसी प्रकार संसार को देखने के दो मूल तरीके हैं। एक है धर्म-निर्पेक्ष सांसारिक नज़रिया (जो संसार को मूल रुप से परमेश्वर के बिना देखते हैं) और एक है पवित्र शास्त्र पर आधारित (या परमेश्वर पर केंद्रित) नज़रिया।

पहला गुट हम कह सकते हैं कि धर्म-निर्पेक्ष नज़रिया रखता है। इसका अर्थ यह है कि उनके विचारों में परमेश्वर के लिये कोई जगह नहीं है। वो परम सच्चाई का इंकार कर यह सोचते हैं कि कई अपने भाग्य के विधाता वो खुद हैं।

इन लोगों का विश्वास यह है कि संसार को अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिये अधिक शिक्षण की आवश्यक्ता है। वो यह विश्वास नहीं करते कि संसार की रचना परमेश्वर ने की और पाप और न्याय के विचार को झुठलाते हैं।

इन लोगों के लिये सच और झठ का फैसला लोगों की संख्या पर निर्भर होता है। इन लोगों के लिये पवित्र शास्त्र की बातें, सही और गलत और मसीह यीशु द्वारा उद्धार एक मूर्खता है।

वचन २० में

इस सांसारिक नज़रिये के बारे में पौलुस एक सरल प्रश्न पूच्छता है: "यह तुम्हें कहां ले आया है?" इस परमेश्वर रहित विचार ने संसार को कैसे बढ़ाया है?

हम गरीबी, नफरत और भेद-भाव की समस्या को सुलझा नहीं पाए हैं। हमने हमारी नैतिकता में कोई बढ़ौतरी नहीं की....पर हम वास्तव में और अधिक स्वार्थी, असावधान और व्यभीचारी बन गए हैं।

एक माता पिता होने के नाते आपको कभी-कभी अपने बच्चे को वो काम करने की अनुमती देनी पड़ती है जो आप जानते हैं कि इससे कुछ फायदा नहीं होगा। आप उन्हें संघर्ष करते, चिड़ते और असफल होते देखते हैं। फिर भी इस काम को उनके तरीके से करने की अनुमती आपको देनी पड़ती है। इससे पहले कि वो अन्ततः आपकी ओर मुड़ें उन्हें यह देखना ज़रुरी है कि वो क्या कर रहे हैं वो खुद नहीं जानते।

पौलुस चाहता था कि लोग यह देख पाएं कि संसार का मार्ग कहीं नहीं पहूंचाता। परमेश्वर रहित संसार के खोखलेपन को सुलैमान ने खोज निकाला था। उसने सभोपदेशक की किताब १:१६-१७ में यह लिखा है।

वचन २१ में

यह दो चुनाव हैं : सांसारिक तरीका या परमेश्वर का तरीका : मनुष्यों की बुद्धिमानी हो या मूर्खता जैसा प्रचार किया गया है : यह कि उद्धार सिर्फ मसीह में मिलेगा।
वचन २२-२५ में पौलुस यही बात उसके समय के यहूदी और युनानियों को समझाता है।

ऐसा लगता है कि हरएक के पास एक बहाना है कि, क्यों वे यीशु के शीक्षण को नहीं अपनाते। यहूदी और ज्यादा चमत्कार चाहते थे। जिस यीशु के बारे में प्रचार किया जा रहा

था वो मसीहा उनकी सोच के अनुसार नहीं था। वो अब भी एक राजा का इंतज़ार कर रहे थे एक बढ़ई का नहीं।

उनको "सबूत" चाहिये था। यीशु ने यहूदियों से कहा कि उनको सिर्फ एक ही सबूत की ज़रुरत है और वो है पुनरुत्थान। विश्वास न करने के लिये लोगों के पास हमेशा बहाने तैयार रहेंगे।

युनानी इनसे अलग थे। पौलुस कहता है, "वे बुद्धि की खोज कर रहे थे"। इसका अर्थ यह नहीं कि वे सच्चाई के लिये तैयार थे।

इसका अर्थ है कि वे सच्चाई को ढूंढकर उससे सौदा करना चाहते थे। वे अपने ईच्छा के अनुसार सबकुछ करना चाहते थे। वे परमेश्वर के वचन को सच्चाई मानकर अपनाना नहीं चाहते थे।

उन्हें बहस से प्रेम था, वे ज्ञान में आनन्द पाते थे।

वे सच्चाई की खोज में न थे....वे खुद परमेश्वर बनना चाहते थे ! वो अपने खुद की सच्चाई नीर्धारित करना चाहते थे। वे अपनी मर्ज़ी पर चलना चाहते थे। वे किसी के अधीन रहना नहीं चाहते थे.... खास कर परमेश्वर के !

२. उद्धार के लिये परमेश्वर का सामर्थ

सांसारिक धर्म-निर्पेक्ष नज़रिया पहला आईना है जिससे हम संसार को देखते हैं। दूसरा "आईना" जिससे हम संसार को देखते हैं उसे हम पवित्र शास्त्रीय नज़रिया कहेंगे।

इस नज़रिये की शुरुआत इस बात से होती है कि परमेश्वर ने संसार की रचना की। यह इस बात में विश्वास करता है कि परमेश्वर अपनी सृष्टी में शामिल हैं और यीशु के मानवी शरीर में इस संसार में प्रवेश किया और पवित्र शास्त्र जो हमें स्थीर स्तर या नियम देता है उसके द्वारा अपने को हम पर प्रकट किया।

एक व्यक्ति जो पवित्र शास्त्र के नज़रिये से देखता है उसे यह जान पाता है कि हम सभी मनुष्य पापी हैं और उस चीज़ की ज़रुरत हम सभी को है जो केवल यीशु ही दे सकते हैं।
वचन २६-३१ में

पौलुस यहां कलीसिया से अपने खुद की बनावट को देखने को कहता है।

इससे ऐसा लग सकता है कि पौलुस कलीसिया का अनादर कर रहा है। ऐसा कतई नहीं है। पौलुस एक मुद्दा रख रहा है : परमेश्वर हमेशा ही सामान्य लोगों तक पहूंचे हैं।

वो जो अपने ही बुद्धिमत्ता और महानता से भरे थे, परमेश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिये लगने वाली दीनता उनमें नहीं थी।

पहले व्यवस्थाविवरण ७:७ में मूसा ने इस्राएल के लोगों को यह याद दिलया (वचन पढ़ें)

परमेश्वर चाहते हैं कि हम उनके पास दीनता के साथ आएं; इस इच्छा से कि वह हमारी अगुवाई करें। परमेश्वर चाहते हैं कि हम उनपर गर्व करें ना कि अपने आप पर। नतीजा यह हुआ कि संसार के "मशहूर हस्तियों" और संसार को "हीलाने डुलान" वालों की बजाए सामान्य लोगों ने यीशु के सुसमाचार को अपनाया। उन्हें किसी पर निर्भर रहने के विचार से नफरत है।

वचन ३० में हमें बताया गया (वचन पढ़ें)

मूलत: पौलुस यह कहता है कि वो जो क्रूस के संदेश को (याने यीशु इस संसार में आए, अपना जीवन बलीदान किया, और मुर्दों में से जी उठे), अपनाते हैं, वे परमेश्वर की संगती और शान्ती में रह पाते हैं।

इन लोगों को जीवन का एक नया नज़रिया मिलता है। वे परमेश्वर की नज़र से चीज़ों को देखते हैं।
उनके सचाई का स्तर कभी नहीं बदलता। वो कभी नहीं बदलता : यह एक लंगर (जो समुद्र में जहाज़ों को एक जगह स्थिर रखता है) है जिसपर हम अपना जीवन बना सकते हैं।

पौलुस कहता है कि वे जो नए जीवन और उद्धार के लिये यीशु की ओर मुड़ते हैं वे अचानक उसे "पा जाते" हैं। ये ऐसा है जैसे कि हमारी आत्मा में एक रौशनी जल उठती है और अचानक जीवन को मकसद और दिशा मिल जाती है।

वो जो पहले समझना बहूत ही कठीन लगता था अचानक स्पष्ट हो जाता है। अब सुसमाचार का संदेश मूर्खता नहीं लगता, वो डहमारे स्तूती और आराधना की प्रेरणा बन जाता है।

पौलुस कहता है कि परमेश्वर के सामने खड़े होने का इन लोगों का एक हक़ है। हमें क्षमा

मिलती और हम नए किये जाते हैं। हमारे जीवन में परमेश्वर उनका जीवन, समझ,दृष्टिकोण को बनाने की शुरुआत करते हैं।

अध्याय-४
सच्चाई में आगे बढ़ना
१कुरिन्थियों २:६-१६

हम सभी जानते हैं कि एक बालक के लिये सरल सोच से निकलकर जटील बातों को सुलझाने की क्रिया साधारण है।

उन्हें मूल मातों (जैसे रेंगना और खड़ा रहना) से आगे बढ़कर जटील मातों को करना सीखना चाहिये (जैसे दौड़ना, कूदना, जढ़ना, छलांग लगाना)। एक बालक जो इस प्रकार ने नहीं बढ़ता है वह तन्दरुस्त नहीं होता है।

यदि बालक इस प्रकार से नहीं बढ़ रहा है तो हम उसे डॉक्टर के पास ले जाते हैं क्योंकि हम जान जाते हैं कि उसमें कुछ समस्या है। इन बच्चों को अपाहिज कहा जाता है क्योंकि जिस तरह उन्हें बढ़ना चाहिये उस तरह वो नहीं बढ़ते।

जैसे हम १कुरिन्थियों २:६-१६ में पौलुस के वचनों का अध्ययन करेंगे प्रेरित पौलुस वहां कुरिन्थ की कलीसिया को प्रोत्साहन देता है कि वे अपने विश्वास में आगे बढ़ें ना कि एक ही जगह अटक कर धार्मिकता में अपाहिज हो जाएं।

पौलुस चाहता था कि कुरिन्थ की कलीसिया (और हम) वचनों में आगे बढ़ें।

समझ (या आगे बढ़ने) का अर्थ इस युग की बुद्धिमानी नहीं
१कुरिन्थियों २:६-१६

आईये हम फिर से पढ़ें। पौलुस यह कहकर शुरुआत करता है।

पौलुस चाहता था कि कुरिन्थि के लोग ये जान लें कि मसीही विश्वास में सीखने के लिये बहुत कुछ था। सुसमाचार की अद्‌भुत बात यह है कि यह इतना आसान है कि एक बच्चा भी इसे आसानी से समझ सकता है लेकिन उतना ही गहरा भी है कि एक धर्मशास्त्र विद्वान भी इसकी गहराईयों को पूरी तरह से जांच नहीं सकता।

लेकिन हमें यह समझना ज़रूरी है कि धार्मिक परिपक्वता (समझ) और शैक्षणिक ज्ञान दोनों अलग बातें हैं। आप महाज्ञानी हो सकते हैं फिर भी धार्मिक बातों में बच्चे। आप संसार के लिये भले ही विद्वान हों सकते हैं और फिर भी धार्मिक ज्ञान में शून्य। आप एक पाठशाला में पढ़ा सकते हैं फिर भी आप में धार्मिक ज्ञान न के बराबर होगा।

यह समझना ज़रुरी है। हमारे आस पास सांसारिक चतुर लोग हैं जो बसीहियत की नीन्दा करते हैं।

आईये हम वचन ४ देखें,

पौलुस ने कहा कि यह लोग सच्चाई को समझ **नहीं** सकते। यह उसके लिये मूर्खता है। युनानी भाषा में "मूर्ख" का विशेषण है वह व्यक्ति जिस पर सच्चाई, कर्तव्य, और उत्तमता का सही प्रभाव नहीं पड़ता है। इन लोगों के लिये सुसमाचार का संन्देश मूर्खतापूर्ण,उपहासपूर्ण और अरुचिकर है।

हमारे दिमाग़ में इस बात को साफ रखना महत्वपूर्ण है। पौलुस कहता है "इस युग के शासक" कुछ हासिल नहीं कर पाएंगे। उनकी कोई दिशा नहीं है।

प्रौढ़ बुद्धि परमेश्वर से आती है

वचन ७-९ में पौलुस ने लिखा,

एक समझदार मसीही के पास जो बुद्धि है वह संसार से कुछ अलग है क्योंकि इसे आप तर्क से नहीं सीख सकते....यह कुछ ऐसा है जो परमेश्वर हम पर खोलते हैं।

पाप के कारण हम परमेश्वर के ज्ञान को समझ नहीं पाते हैं। हमारी आँखें अन्धि हो जाती हैं और परमेश्वर को सच्चाई हम पर खोलना पड़ता है।

वचन ९ में पौलुस कहता है परमेश्वर की रचना और योजना कुछ ऐसी है जो मनुष्य की कल्पना और सोच से परे है। यह कुछ ऐसा है जो इस संसार की बातों से अती उत्तम है। इसके बारे में सोचिये।

संसार कहता है कि हमारी ईच्छाओं की संतुष्टी हमें आनन्दित करती है।

परमेश्वर कहते हैं कि हमारी ईच्छाओं पर काबू रखें ताकि हम आनन्द पा सकें।

- संसार हमें लड़ने, पक्का न्याय पाने और बदला लेने को कहता है, क्योंकि यदि ऐसा न करें तो संसार तुम्हे डरपोक कहता है; परमेश्वर का ज्ञान हमें कहता है कि अपने दुश्मन से प्रेम करो और दूसरों को क्षमा करो। क्योंकि तब ही हम परमेश्वर के पुत्र कहलाएंगे।
- संसार कहता है जिस से भी हम बच निकलें वो सब काम हमें करना चाहिये; क्योंकि हरकोई यही करता है; परमेश्वर का ज्ञान कहता है, "हमारे हर छुपे हुए कर्म और विचारों का हिसाब हमें न्याय के दिन देना होगा" (याने हम "किसी बात से बच नहीं सकते")।
- संसार कहता है पदक, ट्रॉफी, संम्पत्ती और उपाधी यही सबसे महत्वपूर्ण है; परमेश्वर का ज्ञान कहता है चरित्र और संकल्प ही सबसे महत्वपूर्ण है।

समझ से भरी बुद्धि परमेश्वर की आत्मा से मिलता है

पौलुस हमसे कहता है कि "आत्मा सब बातें, वरन् परमेश्वर की गूढ़ बातें भी जानता है"। (व१०)

इस कल्पना का वर्णन पौलुस एक समानता से करता है। वह बताता है कि आपके पती/पत्नी या गहरे दोस्त भी आपके "सही रुप" को नहीं जानते। मैं क्या सोच रहा हूं जब मैं ये बताऊं तब ही लोग जान पाएंगे।

इसी रीति से पौलुस कहता है , सिर्फ एक ही चीज़ है जो परमेश्वर को बेहतर रुप से जानता है वो है उनका आत्मा। अविश्वसनीय बात यह है कि परमेश्वर उनका आत्मा हमें देते हैं जब हम हमारे पापों को मानकर उनसे पश्चाताप करते और मसीह में अपनी आशा और विश्वास लगाते हैं।

यीशु ने कहा पवित्र आत्मा हमारे भीतर रहकर बरमेश्वर के मन और ज्ञान को जानने में हमारी मदद करेगा। जब हम यीशु मसीह के पीच्छे चलने लगते हैं तब हमारी मदद के लिये हमें पवित्र आत्मा दिया जाता है।

पवित्र आत्मा हमारी अगुवाई करता, हमें शक्ति देता और परमेश्वर की सेवा करने के लिये हमें सुसज्ज करता है। पौलुस ने यह सीखाया कि जो कोई विश्वास करता है उसे पवित्र आत्मा दिया जाता है। सच तो ये है कि रोमियों की किताब में पौलुस कहता है यदि किसी में मसीह का आत्मा नहीं है तो वह उसका जन नहीं है। (रोमियों ८:९)

परमेश्वर का आत्मा धार्मिक ज्ञान के लिये कैसे काम करता है यह इन तीन शब्दों से जाना जा सकता है: प्रकटीकरण, प्रेरणा और प्रकाश। **प्रकटीकरण** याने स्पष्ट है कि किसी बात का खुलासा, "पर्दा उठाना" या किसी बात को खोलना। इसका अर्थ है कि पवित्र आत्मा "परमेश्वर पर से पर्दा उठाता है।"

पवित्र आत्मा सच्चे और जीवित परमेश्वर को उजागर करता है।
प्रेरणा बताता है पवित्र शास्त्र के लेखकों के बारे में जिनमें और जिनके द्वारा परमेश्वर का आत्मा ने काम किया ताकि उनके शब्द परमेश्वर के ही शब्द हों। वचन मानवी व्यक्तित्व के द्वारा लिखा गया लेकिन हर प्रक्रिया पर परमेश्वर की नज़र थी ताकि हर शब्द जो कहा गया वो परमेश्वर के सही चरित्र को उजागर करे।

२तिमुथियुस ३:१६ में पौलुस कहता है कि हर एक पवित्र शास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है। वह उपदेश देने, समझाने, सुधारने, और धर्म की शिक्षा देने के लिये लाभदायक है।

इसी प्रेरणा के कारण हम पवित्र शास्त्र को "परमेश्वर का वचन" कहते हैं। पवित्र शास्त्र के वचनों में परमेश्वर हमसे स्पष्टता से बात करते हैं। पवित्र शास्त्र में परमेश्वर उनके प्रेरित शब्दों के द्वारा अपने को हम पर प्रकट करते हैं।

निष्कर्श

इसका संम्बन्ध झगड़ों से कैसे है? पौलुस चाहता था कि कलीसिया इस बात को समझे कि यदि वे पवित्र आत्मा के अधीन हैं तो दूसरे मसीहियों से स्पर्धा करने की आत्मा को बढ़ावा नहीं देंगे। परमेश्वर का आत्मा फूट द्वारा मसीह के शरीर को नहीं फाड़ता। शरीर का मकसद है परमेश्वर की महीमा ना कि लोगों के छोटे-छोटे गुट।

किसी ने कहा था कि परमेश्वर के महानता की गहराई में कलीसिया बहुत कम शिष्यों से भरी है। सच में हमारा ध्यान भटक गया है। हम हमारी ऊर्जा और समय संसार के तुच्छ बातों के पीच्छे गंवा रहे हैं।

परमेश्वर के आत्मा की आवाज़ हमें सुनाई नहीं पड़ती क्योंकि हमारे जीवन में शांत समय बहूत कम हैं। टी.वी. चल रहा है, या गाने बच रहे हैं, मोबाईल बज रहा है या फिर हम विडियो देख रहे हैं।
हम अब ये नहीं जानते कि कैसे "स्थिर रहकर यह जानें कि वह परमेश्वर है"। हमारे सब

कामों के शोर में हमने आत्मा की आवाज़ जिसे परमेश्वर ने हमारे जीवन में बोया था; डुबो दिया है।

अध्याय-५
मसीह के शरीर में एकसाथ मिलकर काम करना
१कुरिन्थियों ३:१-९

इस सुबह हम १कुरिन्थियों ३ पर अपना ध्यान लगाएंगे। यह पिछले सप्ताह कलीसिया में धार्मिक नासमझी से उत्पन्न झगड़े के बारे में पौलुस ने जो बात किया कुछ उसी पर आधारित है।

इस अनुछेद में पौलुस कुरिन्थ कलीसिया को भाई कहकर संबोधित करता है - उसे उनका ध्यान था और चाहता था कि वो जो कहना चाहता है उसे वे सुनें।

इस अनुछेद में पौलुस क्या कह रहा है यह जानने के लिये हमें कुरिन्थ की कलीसिया का इतिहास जानना पड़ेगा।

कुरिन्थ कलीसिया की पुरानी कहानी हमें प्ररित के अध्याय १८ में मिलती है। पौलुस कुरिन्थ के शहर में आया और दूसरे शहरों में जाकर जैसे वह प्रचार करता था वैसे ही यहां भी प्रचार करने लगा ।

वह लगभग देड़ साल तक वहां रहा और कुरिन्थ में कलीसिया की स्थापना की। पौलुस जब अपने सेवा कार्य को आगे बढ़ाने के लिये उस शहर से चला गया, तब वहां एक पढ़ा लिखा व्यक्ति आया जिसका नाम अपुल्लोस था, और कलीसिया के कुछ अगुवों (प्रिस्कील्ला और अक्विला) के कहने के बाद वह यीशु के बारे में निडरता से प्रचार करने लगा।

जब हमें यह पता चलता है कि पौलुस सेवा कार्य के लिये कुरिन्थ शहर में गया, तो वचन १ और २ में उसने जो लिखा वो भली भांती समझ आता है।

जब पौलुस पहली बार कुरिन्थ में आया तब उसने जैसे बच्चों को बोतल से दूध पिलाया जाता है उस तरह से लोगों को सुसमाचार सुनाया। वह धार्मिक बातों की गहराई में नहीं गया, उसने सिर्फ मूल बातों पर ध्यान दिया, क्योंकि उस समय कुरिन्थ के लोगों में सिर्फ उन ही बातों को समझने की क्षमता थी। कुरिन्थ के लोगों को केवल मूल बातों का ही ज्ञान है इसलिये पौलुस उन्हें दण्ड नहीं दे रहा था - पौलुस उन्हें इसलिये दण्ड दे रहा था कि वे अब

भी उन्हीं बातों में अटके थे उससे आगे नहीं बढ़े थे। और इसी बात के कारण कलीसिया में समस्याएं उत्पन्न हो रही थीं।

पौलुस लोगों को यह बता रहा था कि वे कहां गलती कर रहे हैं और क्यों उनकी कलीसिया में
समस्याएं आ रही थीं - लेकिन मैं समझता हूं कि इस अनुछेद को हम एक दूसरे नज़रिये से भी देख सकते हैं।

इसे देखकर हम पूच्छ सकते हैं कि, "कुरिन्थ की कलीसिया में जो समस्याएं थीं उन समस्याओं से बचने के लिये हमें क्या करना चाहिये?" मैं सोचता हूं कि दो प्राथमिक सिद्धान्त हैं जो हम इस अनुछेद से ले सकते हैं।

समझदारी में आगे बढ़ो

पहला सिद्धान्त यह है कि हमें समझदारी में आगे बढ़ना है। इसके बारे में पीछले सप्ताह हमने कुछ बात की। धार्मिक समझदारी याने सच्चाईयों से आगे भी कुछ जानना। धार्मिक समझदारी याने हमारे अन्दर मसीह का सा मन है - हमारी पहले की सोचने की क्षमता के परे जाकर वह सोचने का प्रयास करना जो परमेश्वर चाहते हैं कि हम सोचें।

एक कलीसिया होने के नाते हमें आगे बढ़ना सीखना है। जब तक हम संसार के दर्शन-शास्त्र और संसार के सोचने के तरीके को अपनाते रहेंगे, तो संसार की जो समस्याएं हैं वही हमारी भी होंगी!

तो, हम देखते हैं कि हमारी सोच और हमारे कर्मों में बढ़ना हमारे लिये कितना महत्वपूर्ण है, लेकिन प्रश्न यह है कि हम ये करेंगे कैसे? मैं समझता हूं कि धार्मिक समझदारी में बढ़ने के तीन मूल सिद्धान्त हैं। पहला यह कि हमें इस बात को समझने में समय बीताना चाहिये कि परमेश्वर कौन हैं और हम कौन हैं।

हमारे और परमेश्वर के बारे में सीखना

अनेक प्रकार की समस्याओं पर आज हमारे पास कई प्रश्न हैं - और हमें हमेशा से पता था कि इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढने के लिये हमें कहाँ जाना चाहिये।

हम इंटरनेट पर सच्चाई पता करने के लिये जाते हैं, डॉक्टर एक दर्द के लिये, मकॅनिक

आवाज़ दूर करने के लिये, प्लंम्बर गलना बन्द करने के लिये इंटरनेट पर जाते हैं। हमारे प्रश्नों का उत्तर ढूंढने में हमें कोई परेशानी नहीं होती - हम तज्ञ लोगों के पास जाते हैं। लेकिन परमेश्वर और हमारे बारे में जानने के लिये हम कहाँ जाएंगे?

यदि हमें उत्तर पाना है तो यहां हर प्रकार के तज्ञ लोग हैं जिनके पास हम जा सकते हैं, जैसे इंटरनेट, हमारे दोस्त, लेकिन यदि आप एक प्लंम्बर के पास यह पूच्छने जाएंगे कि आपके गले में र्दद क्यों है, तो यह सच में उसकी तज्ञन्ता के परे है।

परमेश्वर और हमारे बारे में सीखने के लिये हमें एक तज्ञ (एक्सपर्ट) की ज़रूरत है। परमेश्वर तज्ञ हैं, इसलिये हमें इन उत्तरों के लिये पवित्र शास्त्र में ढूंढना चाहिये। अक्सर हम इस उलझन में पड़ जाते हैं कि हमें ये पता तो होता है कि उत्तर पवित्र शास्त्र में ही है, लेकिन उसे कैसे पाना है ये हम नहीं जानते। तो मुझे कुछ सुझाव देने की अनुमती दो।

जब भी आप किसी वचन के अनुछेद को पढ़ें तो अपने आप से ये चार प्रश्न पूच्छें।

१. इस अनुछेद का अर्थ क्या है? दूसरे शब्दों में लेखक क्या कहना चाहता है? इस अनुछेद का मुख्य धारणा क्या है? इसे लिखने का लेखक के पास क्या कारण था?

२. यह अनुछेद मुझे परमेश्वर के बारे में क्या सीखाता है? क्या यह मुझे उनके चरित्र के बारे में सीखाता है? क्या यह परमेश्वर के सामर्थ को दर्शाता है? क्या यह मुझे परमेश्वर के किये सब कामों के बारे में बताता है?

३. यह अनुछेद मुझे मेरे बारे में क्या सीखाता है? क्या यह अनुछेद मुझे मेरे मकसद के बारे में सीखाता है? क्या यह मुझे परमेश्वर के सामने मेरे स्थान को बताता है? क्या यह मुझे यह सीखाता है कि मेरा बर्ताव कैसा होना चाहिये?

४. इस अनुछेद के अनुसार मुझे किन बातों में बदलना है? दूसरे शब्दों में, इस नए ज्ञान की रौशनी में, क्या अलग होना चाहिये? क्या मुझे अपना धर्म-शास्त्र बदलना है - परमेश्वर और संसार के बारे में मेरी जो सोच है? क्या मुझे कुछ करने की शुरुआत करनी चाहिये? कुछ करना बन्द करना चाहिये? मुझे किस चीज़ में बदलना है?

हमें पवित्र शास्त्र के साथ बात चित करना चाहिये। जब हम प्रश्न करेंगे, तब हम बात चित करेंगे, और फिर हम आगे बढ़ेंगे। आपने जितना सोचा उससे भी अधिक प्रश्न आपके सामने आएं तो कोई बात नहीं...उन्हें ध्यान में रखकर तज्ञ लोगों से पूछें। आप निश्चित ही बढ़ेंगे।

ईमानदार रहें

यदि आप नशा छुड़ाने वाली संस्थाओं के बारे में सोचें तो आपको उन सभी में एक बात समान दिखाई देगी-वो तब ही काम कर पाते हैं जब आप ईमानदारी वो सब करें जो वो कहते हैं। पहला कदम हमेशा यह मानना है कि आपके साथ कुछ समस्या है। और वो लोग जो इन संस्थाओं में जाते हैं यदि आप उनसे पूच्छें तो वो यही कहेंगे कि जब तक आप ईमानदार नहीं बनेंगे, तब तक अपनी लड़ाई आप अकेले ही लड़ेंगे।
हम अक्सर यह सोचते हैं कि हमें अपनी कमज़ोरियों को एक दूसरे से छुपाना चाहिये। हम नहीं बढ़ पाते क्योंकि हम नहीं चाहते कि हम सच में कैसे हैं ये किसी को पता चले। तो हम कुछ और चताते हैं, और अपनी लड़ाई अकेले लड़ते रहते हैं।

हम नहीं बढ़ते क्योंकि हमारी गलतियों को छुपाने में हम काफी व्यस्त रहते हैं। इससे पहले कि हम एक दूसरे के साथ ईमानदार बनें हमें परमेश्वर के साथ ईमानदार बनना है।

हमें उनके पास आकर उन्हें यह बताना चाहिये कि हम किस बात से परेशान हैं और हमारे संघर्ष क्या हैं। कई लोग सोचते हैं कि हमें परमेश्वर के साथ भी ईमानदार रहने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन सच्चाई यह है कि, परमेश्वर पहले से ही हमारे संघर्षों और हमारे विचारों को जानते हैं- उन बातों को हमें उनसे छुपाने की कोई ज़रुरत नहीं है।

तो प्रभु के साथ ईमानदार रहने के लिये मैं आपको प्रोत्साहन देना चाहता हूं। अपने संघर्षों के बारे में, जिन क्षेत्रों में आप गड़बड़ी महसूस करते हैं, वो पाप जिसमें आप बार बार गीरते हैं-उन्हें सही बताने का प्रयत्न न करें और इन सबके बारे में ईमानदार रहें। अपने संघर्षों को ईमानदारी से परमेश्वर के सामने रखें, और उन पर विजय पाने के लिये परमेश्वर आपको सामर्थ और नज़रिया देंगे।

निर्देशों का पालन करें

आगे बढ़ने के लिये तीसरी बात जो हमें करनी है वो यह है कि जो हम से करने के लिये कहा जाए वैसा ही करें। संसार हमें जीने के लिये अनेक नीयम देता है, और हम उनमें से अधिकतर नीयमों को समझते हैं।

हम इसलिये उन नीयमों का पालन करते हैं क्योंकि वो हमें सही लगते हैं, या फिर हम उनके पालन न करने के नतीजे को जानते हैं।

लाल बती देखकर हम रुक जाते हैं, हर एक चीज़ का कर हम अदा करते हैं। हम जानते हैं कि हम कुछ खास जानवरों का शिकार नहीं कर सकते। हम जानते हैं कि हमें प्लास्टिक और अन्य वस्तुओं को फिर से उपयोग में लाने के लिये देना चाहिये। हम कभी-कभी इन

नीयमों के पीच्छे क्या कारण है नहीं जानते फिर भी उनका पालन करते हैं।

जीने के लिये परमेश्वर ने भी हमें नीयम दिये हैं। जब हम उनके नीयमों (चाहे वो हमारे समझ में भी न आएं) का पालन करें तो हम बढ़ेंगे। जब संसार के नीयम और परमेश्वर के नीयमों के बीच फैसाल करना पड़े तो, परमेश्वर के नीयम का पालन करो- क्योंकि हम आत्मिक ज्ञान की तलाश कर रहे हैं न कि संसारिक ज्ञान की।

जब हम परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हैं, हम यह जान पाते हैं कि परमेश्वर भी जानते हैं कि वह किस बारे में बात कर रहे हैं। परमेश्वर की तरह हम विस्तारित रुप को नहीं देख सकते। विश्वास करो या न करो परमेश्वर इस विस्तारित रूप को काँग्रेस से भी बेहतर जानते हैं। हमें उनके नीयमों पर विश्वास कर उनका पालन करना चाहिये। जब तक हम उन आज्ञाओं का पालन नहीं करते तब तक हम उनके कारण को नहीं जान पाते।

तो इस अनुछेद से पहला सिद्धान्त जो हम सीखते हैं वो है बढ़ना। इस अनुछेद से दूसरा सिद्धान्त जो हमें सीखना है वो है हमारे मकसद को पूरा करना।

अपना मकसद पूरा करो

वचन तीन से नौ तक पौलुस ने कुरिन्थ की कलीसिया के खास समस्याओं के बारे में बात किया है।

अध्याय १ में उसने जिस समस्या की बात की वह फिर से उसी ओर लौट रहा था। कौनस शिक्षक उन्हें सबसे अच्छा लगता है इस बात को लेकर कलीसिया में फूट पड़ रही थी।

वो इस बात पर लड़ रहे थे कि कौनसा पादरी सबसे बढ़िया है। उसी के सदृश्य एक बात के द्वारा पौलुस ने उनको समस्या के जड़ के बारे में बताया ताकि उन्हें यह बात आसानी से समझ आ सके।

यह एक ऐसी बात है जो हम भी आसानी से समझ सकते हैं। पौलुस ने एक किसान का उदाहरण देकर समझाया।

आओ हम इस उदाहरण को देखें। पौलुस ने कहा उसने बोया, अपोल्लुस ने पानी दिया, लेकिन बीज को बढ़ने में मदद परमेश्वर ने किया। यह समझने के लिये सच में एक आसान उदाहण है। पौलुस हमें कह रहा है कि वो और अपोल्लुस एक किसान के समान हैं - पौलुस का काम था जाकर विश्वास के बीज बोना। बाद में अपोल्लुस आया और उसने पानी देने के

काम में मदद किया। किसान को यह पता होता है कि यदि फसल पैदा करना है तो दोनों बातों का होना ज़रुरी है।
पौलुस कहता है कि हमारे दो प्राथमिक काम हैं - हमें बीज बोना है, लेकिन उनको बढ़ाने में भी हमें मदद करना है। इस अनुछेद को देखकर यह कहना स्वाभाविक ही है कि मेरा काम है बीज बोना, या मेरा काम है उसकी देखभाल करना या बढ़ाना - लेकिन असल में पौलुस यह नहीं कह रहा है। कभी - कभी किसान को ही बीज बोना और उसकी देखभाल करना पड़ता है - लेकिन उसे दोनों ही काम करने पड़ते हैं।

हमें जिस प्रकार के फल की आशा है यदि वैसा नहीं होता है तो चिन्ता करने की ज़रुरत नहीं क्योंकि बीज को बढ़ाना परमेश्वर के नियंत्रण में है। यह हमारे लिये प्रोत्साहन की बात होनी चाहिये, क्योंकि हमें हमारे काम को बेहतर रुप से करना है और फल परमेश्वर के हाथों में छोड़ देना चाहिये।

बीज बोना और उसे पानी डालने का अर्थ क्या है? बीज बोना उसे कहते हैं जब हम किसी के साथ वचन बाटते हैं। इसके लिये चौराहों पर खड़े होकर प्रचार करना ज़रुरी नहीं है - यह इससे कहीं ज्यादा आसान हो सकता है।

- उस मित्र को जिसे कुछ नुकसान हुआ है, उसे दया और करूणा के कुछ शब्द कहो
- जिनसे कोई बात नहीं करना चाहता उनसे बात करें- उनके जीवन के बारे में पूच्छें
- किसी से उनके प्रार्थना की ज़रुरत के बारे में पूच्छें - और उसके लिये प्रार्थना करें

बीज को पानी डालने का अर्थ है दूसरे मसीहियों को उनके विश्वास में आगे बढ़ने में मदद करना। इसमें भी अनेक किरदार नीभाए जा सकते हैं। लोगों को उनके विश्वास में बढ़ने में मदद करने के लिये आपको एक प्रचारक होना ज़रुरी नहीं है। आप

- कलीसिया में सेवा करने की एक जगह ढूंढ सकते हैं
- अपने मित्र को रविवार की सभा और सप्ताह के दूसरे मीटिंग में लाओ
- जिस व्यक्ति को आप सेवा करते और बढ़ते देखते हैं उसे प्रोत्साहन दो
- आप जानते हैं कि यह व्यक्ति कठीन समय से गुज़र रहा है उसके लिये प्रार्थना करो
- दूसरे मसीहियों से बात करते समय धार्मिक बातों पर चर्चा करो

ऐसा नहीं कि यह सुचि है और आपको ऐसा ही करना है। आप भी नई - नई बातें कर सकते हैं।

उन मौकों को ढूंढते रहो जहां आप किसी दूसरे के साथ सुसमाचार बांट सकें, लेकिन उन मौकों की भी तलाश में रहो जहां आप विश्वासियों को विश्वास में और बढ़ने में मदद कर

सको। फल के लिये आप ज़िम्मेदार नहीं हैं, आपको सिर्फ काम करते जाना है।

अध्याय-६
निरीक्षण में उत्तीर्ण होना
१कुरिन्थियों ३:१०-२३

जीवन में आपको अनेक प्रकार के निरीक्षणों से गुज़रना पड़ता है: सैन्य दल का निरीक्षण, अस्पतालों, इसी प्रकार लीफ्ट और गाड़ियों का निरीक्षण।

ऑडीटर द्वारा अर्थ व्यवस्था और टेक्स भुगतान का निरीक्षण। आपके शरीर के द्रव का निरीक्षण यह जानने के लिये कि इसमें कोई गैरकानूनी चीज़ तो नहीं है।

हरएक बड़े शहर में यदि किसी बील्डींग (आपके अपने घर) में कुछ नया जोड़ना चाहते हैं तो उसके लिये कई सारे परमिट और निरीक्षण के कई दौरों से गुज़रना पड़ता है। कभी - कभी इंस्पेक्टर जब तक बील्डींग के काम को प्रमाणित न कर दे तब तक उस बिल्डींग का का रुका रहता है।

आज के हमारे इस अध्ययन में पौलुस एक मकान बनाने वालों का उदाहरण देता है जिन्हें उनका काम निरीक्षण के लिये देना होगा।

पौलुस परमेश्वर की कलीसिया को एक निर्माणाधिन बिल्डींग के समान बताता है।

बिल्डींग की क्षमता उन वस्तुओं पर निर्भर होती है जो उस बिल्डींग को बनाने में बील्डर उपयोग में लाता है। हमें कहा गया है कि परमेश्वर हमारे कामों का निरीक्षण करेंगे।

यह एक ऐसा निरीक्षण है जिसे हमें सरलता से नहीं लेना चाहिये। यदि हमें इस निरीक्षण में पास होना है, तो पौलुस हमें बताता है कि हमें क्या करना चाहिये।

हमें सही नींव पर घर बनाना चाहिये वचन १०-११

पौलुस कहता है कि हमें सही नींव पर घर बनाना चाहिये। पौलुस अपने आप को एक तज्ञ बिल्डर कहता है। युनानी में इसके लिये "आर्किटेक्ट" शब्द का उपयोग किया गया है। पौलुस अपने आप को एक बिल्डर और डीजाइनर के समान काम करने वाले के रुप में देखता है। कुरिन्थ में कलीसिया की स्थापना उसी ने की थी। उसने नींव डाला जिसपर कलीसिया की स्थापना हुई।

दूसरे लोग उसके बाद आए (पतरस, अपोल्लुस आदि) जिन्होंने उसके बनाए नींव पर बनाया।

नींव के कारण ही बाकी का ढांचा मजबूत बनता है। लेकिन ज्यादातर नींव छुपे रहते हैं। कोई इसे देखता भी नहीं। इसी प्रकार हमारी कलीसिया और हमारे जीवन की मजबूती उस नींव पर निर्भर होती है जिस पर हम इसे बनाते हैं। यह ऊपरी बात नहीं है यह एक गहराई की बात है। यह हमारे जीवन का संकल्प है। यह हमारा स्वभाव है। जब जीवन कठीनाईयों से गुज़रता है तब इसी बात पर हम निर्भर रहते हैं।

वे जो गलत नींव पर बनाते हैं कुछ समय के लिये अच्छा दिखता है। लेकिन जब तुफान आते हैं तो ये नींव ढह जाती है। यदि कोई कलीसिया मसीह के बजाए किसी और चीज़ पर बनाई जाए तो ये केवल नाम मात्र की कलीसिया होती है। यह एक सच्ची कलीसिया नहीं है।

बिल्डींग बनाने की हमारी सामग्री उचत्तम दर्जे की होनी चाहिये

परमेश्वर अपनी कलीसिया और अपने लोगों में गुणवत्ता को देखते हैं। वह चाहते हैं कि हम सोने, चांदी और हीरे - जवाहरात से बनाएं।

दुर्भाग्यवश हम छोटे रास्तों का उपयोग करते हैं (लकड़ी, सूखी घांस और भूसा)। नंगी आँखों से कभी-कभी यह बताना कठीन हो जाता है कि क्या नकली है और क्या असली।

पौलुस कहता है, "परमेश्वर जानते हैं, परमेश्वर देखते हैं, और सच्चाई सामने लाई जाएगी"।

- परमेश्वर की कलीसिया और हमारा जीवन शॉर्ट कट में बनाना बहूत लुभावना लगता है।
- हम वो करना चाहते हैं जो एक बड़ी भीड़ को आकर्षित करे बजाए इसके कि हम

संकल्प

- को ढूंढें।
- जो मजबूत है उसके बजाए जो चमकीला है हम उसके पीच्छे भागते हैं।
- हम हमारे बच्चों को खुश करते हैं बजाए इसके कि हम उन्हें अच्छे चुनाव करना

और

- जीवन में अच्छे गुणों के मूल्य की शिक्षा दें
- हम वही करते हैं जो हमें "करना ही है", बजाए इसके कि हम वो करें जो हम कर

सकते

- हैं
- कुरबानी के बदले हम वो चुनते हैं जो हमारे लिये सुविधा जनक है
- किसी काम को करने में मदद करने के बजाए हम उसके लिये पैसे भेज देते हैं

यह सब बातें लकड़ी, घांस और भूसा हैं।

हमारा स्वभाव सही होना चाहिये वचन १६-२३

पौलुस कहता है कि हमें सही नींव पर घर बनाना चाहिये, हमें उत्तम गुणवत्ता वाली वस्तुओं से बनाना चाहिये, और अन्ततः वह कहना चाहता है कि बनानते समय हमारा स्वभाव सही होना चाहिये।

पौलुस ने कलीसिया को कठोर शब्दों में कहा। उसने यह बताया कि यहां पृथ्वी पर कलीसिया परमेश्वर का मन्दिर है। परमेश्वर चाहते हैं कि उनकी कलीसिया पवित्र हो।

नतीजा, यह कि हमारी बिल्डींग में **फूट के बजाए सहायता की आत्मा का चरित्र** होना चाहिये।

जब हम छोटी-छोटी बातों और फूट को कलीसिया का नाश करने का मौका देते हैं, तो हम परमेश्वर के मन्दिर का नाश कर रहे हैं, और परमेश्वर इसे व्यक्तिगत रुप में लेते हैं। हम परमेश्वर की कलीसिया का द्रोही विचारों की ईच्छा से नाश कर रहे हैं।

पौलुस ने कुरिन्थ के लोगों को अपने मूर्खतापूर्ण फूट से बाज़ आने की चेतावनी दी। हमें एक दूसरे को योद्धा की बजाए भाई के रुप में देखना चाहिये।

वचन १८-२०

पौलुस हमको संसार की बुद्धिमत्ता को छोड़कर **दीनता के स्वभाव को अपनाने** के लिये प्रवृत करता है। वह हमें प्रोत्साहन देता है कि हम सीखने के लिये हमेशा तैयार रहें और यह ना सोचें कि हमें सबकुछ पता है।

वह कहता है कि प्रभु के पीच्छे चलने के लिये (संसार के सामने) यदि हमें मूर्ख भी दिखना पड़े तो इसके लिये हमें तैयार रहना चाहिये। हमें संसार की सलाह और दिशाओं पर चलने के बजाए परमेश्वर के सलाह और दिशाओं पर चलने के लिये उतना दीन बनना चाहिये।

वचन २१-२३ में अन्त में पौलुस यह कहता है

सरल है, पौलुस कहता है, जब आप लड़ रहे और विवाद कर रहे हैं तो आप एक आदर्श

काम नहीं कर रहे हैं (जैसा हम सोचते हैं कि हम कर रहे हैं); आप वास्तव में परमेश्वर के पास आपके लिये जो है उसे सीमित कर रहे हैं।

पौलुस इस कहावत को दोहराता है "सब कुछ तुम्हारा है"। वह चाहता था कि हम इस बात को समझें कि मसीह में हमारा जो उत्तराधिकार है वह इस संसार की छोटी-छोटी बातों से; जिनके लिये हम झगड़ते हैं, कहीं बढ़कर है।

परमेश्वर ने हमें एक महान उत्तराधिकार दिया है और तुच्छ बातों के कारण उसमें फूट डालना मूर्खता है।

अध्याय-७
मसीही अगुवाई की समस्याएं
१कुरिन्थियों ४:१-७

ऐसा लगता है कि कुरिन्थ की कलीसिया में लोग कलीसिया के अगुवों को अलग अलग दर्जा दे रहे थे। कुछ पौलुस को पसन्द करते थे, कुछ अपुल्लोस को और कुछ पतरस को। यह विवाद फूट उत्पन्न कर रहा था।

कुरिन्थ को लिखे अपने इस पत्र के शुरुआती अध्यायों में पौलुस, इस प्रतियोगीता की आत्मा को हटाना चाहता था। पौलुस ने पहले मूल बातें बताई।

उसने लोगों को याद दिलाया कि इनमें से किसी भी अगुवे या शिक्षक ने उन लोगों को बचाने के लिये कुछ भी नहीं किया था। सिर्फ यीशु ही अकेले उनके निष्ठा के पात्र हैं।

१कुरिन्थियों ४ में पौलुस शब्दों के चित्र जोड़ते हैं।

अगुवों का काम वचन १-२

इस लेख में दो तस्वीरें हैं। पहला मिलता है "सेवक" इस शब्द में। पौलुस सेवक के लिये सामान्य शब्द का उपयोग नहीं करता। पाईभूमि में यह पुरुष कड़ी मेहनत करते। गुलाम किसी भी जहाज़ का एक आवश्यक हिस्सा होते लेकिन बड़ी आसानी से उनकी जगह किसी

ओर को ले लिया जाता।

हम यह कह सकते हैं कि जिस तरह जहाज़ को आगे बढ़ाने के लिये सभी गुलामों को एकजुट हो कर पतवार चलाना पड़ता है, ठीक उसी तरह कलीसिया के अलग-अलग अगुवों को एकजुट हो कर काम करना था (ना कि एक दूसरे के खिलाफ) ताकि परमेश्वर का राज्य बढ़ सके।

दूसरा चित्र इस कहावत में है, "परमेश्वर के भेदों के भण्डारी समझें"। भण्डारी याने घर की देखभाल करने वाला।

एक भण्डारी वह व्यक्ति होता था जो अपने मालिक के घर के काम काज चलाता था। वह दूसरे काम करने वालों का नियंत्रण करता, ज़रुरी चीज़ों की पूर्ती करता, और सीधे अपने मालिक को जवाब देता। वह एक मॅनेजर था। उसका काम आसान था: अपने मालिक के सब कामों का पूरा करना।

यह दोनों चित्र हमारी मदद करते हैं कि मसीह के चेले होने के नाते हमारा काम क्या है। हमें प्रभु की सेवा करनी है। हम पर अपार विश्वास किया गया है। हमें परमेश्वर की भेद की बातों को जानने के लिये बुलाया गया है।

अगुवेपन का मुल्यांकन करना वचन ३-५

इस स्पर्धा की आत्मा को पौलुस ने दूसरे स्तर से बयान किया है। उसने लिखा,

इस अनुछेद में पौलुस ने यह जान लिया कि न्याय के तीन अलग-अलग स्त्रोत हैं। दो पर भरोसा नहीं किया जा सकता। पहला है आपके प्रति **दूसरों का न्याय**। वो लोग हमेशा रहेंगे जो आपकी गलती बताने के लिये तत्पर रहेंगे....चाहे आप उनसे पूच्छें या नहीं। दूसरों के दिये न्याय से पौलुस को कोई लेना देना ना था।

मुझे गलत मत समझो हम एक दूसरे से बहुत कुछ सीख सकते हैं। लोग हम में वो बातें देख सकते हैं जो हम खुद नहीं देख सकते।

दूसरा न्याय जो पौलुस बताता है वह है **अपने भीतर से न्याय**। पौलुस कहता है, "मेरा मन मुझे किसी बात में दोषी नहीं ठहराता। परन्तु इससे मैं निर्दोष नहीं ठहरता"।

पौलुस समझ चुका था कि उसे ऐसा लग सकता है कि वह बहूत महान काम कर रहा है, और वह गलत हो। हमारा विवेक आसानी से मन्द किया जा सकता है ताकि हम उन बातों पर विश्वास करने लगें जो गलत हैं, ऐसा सही में हो सकता है।

क्या राजा दाऊद आपको याद है? उसने बतशेबा के साथ व्यभिचार किया और अपने इस पाप को छुपाने के लिये उसके पती का खून करवा दिया। हर तरह से ऐसा महसूस होता है कि दाऊद को लग रहा था कि वो जो कुछ भी कर रहा है सब सही है। बाद में एक निश्चित समय तक दु:ख मनाने के बाद उसने बतशेबा से विवाह कर लिया।

नबी नातान दाऊद को मिलने के लिये आया और उसे एक धनी व्यक्ति की कहानी सुनाई जिसने अपने मित्र को खाना खिलाने के लिये एक गरीब व्यक्ति का एकलौता भेड़ चुरा लिया।

दाऊद बहुत क्रोधित हुआ और यह घोषणा किया कि वह व्यक्ति दण्ड का पात्र है! नातान ने दाऊद की ओर देखकर कहा "वह व्यक्ति आप हैं"! दाऊद दूसरों की गलतियां देख सकता था लेकिन अपने खुद के जीवन के इतने बड़े पाप के प्रति अन्धा हो गया था। यह हमारे जीवन में भी हो सकता है।

मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि हम अपने विवेक पर भरोसा नहीं कर सकते। हमें जितना अच्छा (बुरा) महसूस करना चाहिये उससे कहीं ज्यादा हमारा विवेक हम महसूस करा सकता है। हमारा विवेक हमारे पाप के प्रति अन्धा बन सकता है या फिर हमारी असफलताओं के कारण हमें मार सकता है।

तीसरा न्याय है **प्रभु का न्याय**। दूसरों के किये न्याय या अपने भीतरी न्याय से हमें ज्यादा चिन्तीत नहीं होना चाहिये।

वे भरोसे के काबिल नहीं हैं। परन्तु हमें प्रभु के न्याय के बारे में चिन्ता करनी चाहिये। पौलुस हमें याद दिलाता है कि केवल परमेश्वर ही निष्पक्ष न्यायाधिश है।

"प्रभु अन्धकार की छिपी बातें ज्योति में दिखाएगा, और मनुष्य के हृदय की ईच्छाओं को प्रकट करेगा"। परमेश्वर जानता है कि हमने क्या किया, क्यों किया, और यह करके हम क्या पाने की आशा रखते हैं। वह जानता है;

-
- दूसरों का ध्यान रखते समय हमारे भीतर जो बढ़कपन की भावना आई थी
- हमारे दया के काम के द्वारा कैसे हमने हमारे फायदे के लिये एक परिस्थिती को

पलटा

वह जानता है कि हमने कब सच कहा लेकिन सामने वाले व्यक्ति ने भरोसा नहीं किया

वह जानता है कि कब हमने बलिदान किया और कब नहीं

नज़रिया बनाए रखना

पौलुस अपने निर्देष जारी रखता है वचन ६-७

इन शब्दों में पौलुस हमें दो क्षेत्रों में संतुलन बनाए रखने को कहता है: **जब न्याय करने की बात आती है**। जब कभी भी आप वचन ५ की तरह कुछ पढ़ें, "समय से पहले किसी बात का न्याय न करो" कुछ लोग ऐसे भी होंगे जो इस बात का यह निष्कर्श निकालेंगे कि हमें कभी भी यह नहीं कहना चाहिये कि ये बर्ताव या विश्वास गलत है।
यह इस अनुछेद का गलत उपयोग करना है! पौलुस का यह अर्थ नहीं था।

अध्याय ५ में पौलुस कुरिन्थ कलीसिया के एक सदस्य को "बुलाता" या उसका सामना करता है जो धड़ल्ले से व्यभिचारी जीवन जी रहा था। उसने कलीसिया से उस व्यक्ति को निकाल बाहर करने को कहा जो इस प्रकार का जीवन जी रहा था।

अध्याय ६ में पौलुस ने कलीसिया से कहा कि हमें कलीसिया के मामलों को मसीही समाज के लोगों के बीच ही निपटाना चाहिये बजाए इसके कि उसे अन्य जाति के न्यायालयों में ले जाएं। सपष्ट है कि पौलुस यह नहीं कह रहा कि हमें न्याय नहीं करना चाहिये।

वचन ६ में पौलुस कहता है कि हमें यह सीखना ज़रुरी है कि, "लिखी हुई बातों से आगे न बढ़ना" इस अनुछेद का सही अर्थ निकालना कठीन है लेकिन मैं समझता हूं कि पौलुस हमें यह कह रहा है हमें सिर्फ उन्हीं बातों का न्याय करना सीखना है जिन बातों को परमेश्वर ने सफाई से कहा है।

दूसरों के कर्म और विश्वास का निष्कर्ष निकालने में हमें सतर्कता से काम लेना चाहिये। हम साफ साफ नहीं देख सकते।

लेकिन फिर भी जिन बर्तावों और स्वभावों को पवित्र शास्त्र स्पष्ट रुप से गलत बताता है उनको गलत कहने का हमें पूरा हक़ है। ऐसा करके हम सिर्फ उस न्यायाधिश के निष्कर्षों को सामने ला रहे हैं जो सब कुछ साफ-साफ देख सकता है।